विनोद कुमार श्रीवास्तव की काव्य-दृष्टि : एक मीमांसा

■ प्रशांत जैन

विनोद कुमार श्रीवास्तव की कविता जटिल रचना-प्रक्रिया से गुज़रने के बाद ही काग़ज़ पर उतरती है। जीवन इतना जटिल है तो उसे प्रतिबिंबित करने वाली कविता की रचना-प्रक्रिया का जटिल होना स्वाभाविक ही है, हालांकि इसका अर्थ भाषा की जटिलता नहीं है। सरल-सामान्य शब्दों में भी एक सशक्त एवं सारगर्भित कविता रची जा सकती है जिसमें संवेदना एवं अनुभूति के झंझावात छिपे हों। इसीलिए कविता सिर्फ़ उतनी नहीं होती जितनी वह शब्द-रूप में दिखाई देती है। लिखे गए शब्दों के बीच अनलिखा भी बहुत होता है। इस अनलिखे को पढ़े-पहचाने बिना, यानी 'रीडिंग बिटवीन द लाइंस' के बिना कविता का पाठ पूरा नहीं हो सकता। लिखे को हम यदि स्थूल कहें तो अनलिखा सूक्ष्म रूप में उस लिखे का ही विस्तार होता है। विनोद कुमार श्रीवास्तव इसी अनलिखे के कवि हैं। उनकी कविता में लिखित शब्द अनलिखे को आधारभूत ढाँचा भर प्रदान करते हैं। विद्युत के किसी चालक की तरह वे अनुभूतियों के वाहक मात्र हैं। कलेवर में छोटी हों या बड़ी, उनकी कविताएँ निश्चित ही सीधी-सरल नहीं होतीं। अर्थ-निष्पत्ति के लिए पाठक को ध्यान एवं संवेदना का पर्याप्त निवेश करना होता है। इस लेख में विनोद कुमार श्रीवास्तव के कवित्व के विभिन्न पक्षों के विश्लेषण एवं मूल्यांकन के साथ ही उनके जीवन-दर्शन एवं समग्र काव्य-दृष्टि की मीमांसा करने का प्रयास किया गया है।

विनोद कुमार श्रीवास्तव के तीनों कविता-संग्रह 'सच मैंने बनाए नहीं', 'एवजी में शब्द' और 'कुछ भी तो नहीं कहा' अपने कथ्य एवं शिल्प को लेकर पर्याप्त चर्चित रहे हैं। इन संकलनों के शीर्षक अपने अनोखेपन की वजह से बरबस पाठक का ध्यान अपनी ओर खींचते हैं। तीन, चार, या पाँच शब्दों वाले ये शीर्षक उनकी रचना-दृष्टि एवं काव्य-चेतना का सूत्र रूप में परिचय देने के लिए पर्याप्त हैं। जब वे कहते हैं 'सच मैंने बनाए नहीं' तो एक कवि के रूप में वे इस तथ्य को ईमानदारी के साथ स्वीकार करते हैं कि मनुष्य के अंतर्जगत एवं बाह्य जीवन के जो सत्य हैं वे सदा से एक समान ही हैं। सभ्यता के हज़ारों वर्षों की परंपरा में कालखंड कोई भी रहा हो, मनुष्य अपनी सकारात्मकता अथवा नकारात्मकता के साथ एक ही तरह से रहता आ रहा है। उसके मन, बुद्धि, चिंतन, विचार, एवं व्यवहार में निहित द्वैत, यथा प्रेम-घृणा, राग-द्वेष, सुख-दुख, आनंद-विषाद, स्वार्थ-परमार्थ, संग्रह-त्याग, आसक्ति-विरक्ति आदि सदा से ही उसके दैहिक, मानसिक, भावनात्मक, एवं आध्यात्मिक अस्तित्व के अभिन्न अंग हैं। कवि मनुष्य-जीवन की इन सच्चाइयों का अपनी कविता में निरूपण मात्र करता है, कोई नए सच नहीं गढ़ता। अपने कृतित्व को किसी नए शोध की तरह मानने-मनवाने वाले कवियों के इस युग में विनोद कुमार श्रीवास्तव की यह स्वीकारोक्ति उनकी सादगी एवं उदारता ही कही जाएगी। वे शब्दों को कवि द्वारा जीवन-यात्रा में प्राप्त किए गए अनुभव एवं संचित अनुभूतियों की एवजी मानते हैं, और इस प्रकार जन्म लेता है उनके दूसरे संग्रह का शीर्षक 'एवजी में शब्द'।

तीसरे कविता संग्रह के शीर्षक 'कुछ भी तो नहीं कहा' का निहितार्थ कवि के जीवन-दर्शन से परिचय कराती इसी शीर्षक की कविता में मिलता है। गहन आत्म-विश्लेषण की शैली में लिखी गई यह कविता समाज में दो व्यक्तियों की अंत:क्रिया को अति सूक्ष्म रूप में चित्रित करती है। इस कविता के माध्यम से कवि यह स्थापना देता है कि जब तक स्वतंत्र अथवा निरपेक्ष रूप से कुछ न कहा जाए, उसे कहा हुआ नहीं माना जाना चाहिए। यदि आप किसी व्यक्ति या पुस्तक को सन्दर्भ बनाकर कोई बात कहते हैं, या ऐसी कोई बात कहते हैं जो पहले भी लोगों द्वारा कही जा चुकी है, तो फिर आपके कहने का कोई मतलब नहीं। इसी तरह जब कोई बात आप पूरी तरह से निस्संग एवं निरपेक्ष हुए बिना नहीं कहते, या सुनने वाले की भंगिमाओं एवं प्रतिक्रियाओं पर आपकी दृष्टि रहती है, तो फिर आपका कुछ भी कहना दरअसल कहना नहीं है। इस तरह सब कुछ कह देने पर भी आपको स्वीकार करना होगा कि आपने 'कुछ भी तो नहीं कहा'। पंक्तियाँ देखें - जब बोल रहा था/ निगाह क्या बोलने पर थी/ होती तो सुनने वालों के/ चेहरे क्यों दिखते/ ..... जो लिखता रहा/ उस पर भी मेरी निगाह थी क्या/ फिर क्यों फिक्र होती/ कैसे लिखना चाहिए/ लोगों पर क्या प्रभाव पड़े और क्यों पड़े/ ..... ऐसा क्या कहा जो अब तक/ कहा सुना लिखा न गया हो/ ..... क्या कहा मैंने सचमुच/ कुछ भी तो नहीं कहा। यह निरपेक्षता एवं निस्संगता अच्छे रचना-कर्म के लिए निश्चित ही कवि का एक आवश्यक गुण है। यही गुण विनोद कुमार श्रीवास्तव की कविता को कृत्रिमता से दूर रख मौलिकता प्रदान करता है।

मेरे विचार में कविता आंतरिक या बाह्य जगत के किसी अनुभव या घटना का वृतांत मात्र नहीं, बल्कि संवेदना की आँच पर अनुभूतियों के क्रथन से आसवित अर्क है। यह बात अलग है कि इन दिनों सपाट एवं खबरनुमा कविता खूब लिखी जा रही है। लिखी नहीं जा रही है बल्कि उसका मास प्रोडक्शन हो रहा है। ऐसी कविता के पैरोकार भी बहुत हैं। शायद इसलिए कि इस कारोबार में हर्र लगे न फिटकरी रंग चोखा। रंग चोखा न भी हुआ तो क्या, कविता में कोई रुपयों का निवेश तो होता नहीं। हाँ बुद्धि, भावना और संवेदना का निवेश अवश्य होता है। वह भी तब यदि ये 'प्रोडक्शन रिसोर्सेज' यानी 'उत्पादन के संसाधन' कवि के पास हों। बहुतेरे लोग इनके बिना भी, मात्र शब्दों से काम चला लेते हैं और हर दूसरे दिन नई कविता के साथ हाज़िर हो जाते हैं। कविता की यह अधोगति विनोद कुमार श्रीवास्तव के लिए चिंता का बायस बनती है। 'त्रास' कविता की पंक्तियाँ देखें – भयावह है सुनना/ कि अब नहीं रही कविताएँ/ पहले जैसी/ ..... भयानक है / कि चुप रह जाए आलोचक/ इस बात पर।

पतन सिर्फ़ कविता का नहीं हुआ है, कवियों का व्यवहार भी लगातार संदेह के घेरे में है। आज की सच्चाई यह है कि कवियों से इतर कविता के पाठक दुर्लभ हैं। और स्वयं कवि भी एक-दूसरे का लिखा ईमानदारी से नहीं पढ़ते। गंभीर चर्चा एवं टिप्पणी की बात तो छोड़ ही दें। टिप्पणी करते भी हैं तो वह परस्पर पिष्टपेषण तक ही सीमित होती है। 'संगत' कविता में विनोद कुमार श्रीवास्तव कहते हैं कि कविता कोई कंज्यूम की जाने वाली कमोडिटी नहीं। कवि भी कोई शिकारी नहीं, कि ख़यालों के जंगल से कोई शिकार मार लाए और अपनी बहादुरी के सबूत के तौर पर गाँव की चौपाल पर रख दे। पंक्तियाँ देखें – फिर कवि तो कवियों के बीच/ सबसे कम रोशनी देते हैं/ और बहुधा वे ही पाए जाते हैं/ कविता के सबसे कमज़ोर/ पाठक और श्रोता भी/ ..... जाना वहाँ पड़ता है/ जहाँ कविता बसती है/ उसके बहेलिये नहीं।

भावनात्मक स्तर पर मनुष्य के व्यक्तिगत अथवा सामूहिक जीवन के दो मूलभूत आयाम होते हैं – राग और द्वेष। लेकिन एक और आयाम है जो मेरे विचार से राग एवं द्वेष की तरह ही व्यक्ति के जीवन का मूलभूत एवं अनिवार्य आयाम है, और वह है – राजनीति। यह राजनीति हमेशा नकारात्मक ही हो ज़रूरी नहीं। यह रचनात्मक भी हो सकती है। व्यक्ति स्वयं के साथ राजनीति नहीं करता, लेकिन समाज और राष्ट्र के स्तर पर जब वह जीता है तो राजनीति उसके अस्तित्व के लिए एक ज़रूरी शर्त बन जाती है। यहाँ तक कि परिवार के स्तर पर भी कुछ हद तक व्यक्ति राजनीति करता देखा जाता है, इसके बावजूद कि सह-अस्तित्व एवं परस्पर-पूरकता परिवार का आधार स्तंभ होते हैं। विनोद कुमार श्रीवास्तव ने अपनी अनेक कविताओं में इस प्रत्यक्ष अथवा प्रच्छन्न राजनीति की पहचान और पड़ताल की है। संग्रह की 'हिस्सा' कविता की ये पंक्तियाँ देखें – लेकिन हिस्सा एक ऐसा शब्द है/ जो ताक़त के साथ ही दिखता है ताक़तवर/ अपने आप में ताक़तवर होता हुआ भी/ बिल्कुल निर्जीव है ताक़त के बिना।

यह हिस्सेदारी भाइयों के बीच जायदाद को लेकर भी हो सकती है, या फिर यह समाज में संसाधनों के बँटवारे का मामला भी हो सकता है। कहीं भी ताक़त के बिना किसी व्यक्ति या समूह के लिए अपना न्यायपूर्ण हिस्सा हासिल करना संभव नहीं। इस कविता में परिस्थितियों के अनुसार 'हिस्सा' शब्द अपने रंग-रूप भी बदलता है। और हर रूप में यह मनुष्य के पारिवारिक अथवा सामाजिक जीवन की किसी कड़वी सच्चाई या विडंबना को अभिव्यक्त करता है। हिस्सा कभी कुटिल शब्द हो जाता है, और कभी भिखमंगा शब्द भी। जहाँ तक कविता के विषय का प्रश्न है, आमतौर पर हम देखते हैं कि कवि के लिए वस्तु, व्यक्ति, स्थान, अथवा कोई घटना ही अमूमन कविता के विषय बनते हैं। लेकिन कोई ऐसा शब्द जो न संज्ञा हो न सर्वनाम और न कोई विशेषण ही हो, कविता का विषय बन सकता है यह बहुत कम दिखाई देता है। 'हिस्सा' ऐसी ही एक कविता है।

विनोद कुमार श्रीवास्तव कहते हैं कि मेरे पास शब्दों का टोटा है। लेकिन उनके लेखन से गुज़रने के बाद यह स्पष्ट दिखाई देता है कि शब्दों का बटुआ भरा होने के बावजूद एक-एक शब्द वे सोच-समझ कर ख़र्च करते हैं। उनके पास कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक कहने का कौशल है। और यह सामान्य समझ की बात है कि शब्दों की कमी से ग्रस्त कवि के लिए यह कदापि संभव नहीं हो सकता। शब्दों की प्रचुरता जिसके पास हो वही किसी भाव अथवा विचार के संप्रेषण के लिए बेहतरीन शब्द चुनकर न्यूनतम शब्दों में अधिकतम अभिव्यक्ति को संभव बना सकता है। लेकिन यह

मितभाषिता मात्र ही उनकी कविता की विशेषता नहीं, शब्दों के बीच चुप्पी या मौन कहीं ज़्यादा बड़ी विशेषता है। उनकी कविता की अगली पंक्ति पिछली की निरंतरता मात्र नहीं होती, बल्कि उन दो पंक्तियों के मध्य अक्सर एक मौन होता है। कुछ होता है, जो जानबूझकर नहीं कहा जाता, और जिसे समझने की जिम्मेदारी पाठक की होती है। इस लिहाज से विनोद जी की कविता का पाठक पैसिव नहीं होता, बल्कि एक्टिव पाठक होता है। या कहें एक्टिव होना उसके लिए ज़रूरी होता है। इस तरह से पाठक कवि की पंक्तियों की ही नहीं, कवि के मनोजगत की भी थाह ले रहा होता है। यदि कविता कवि और पाठक के बीच इस तरह का अंतरंग संबंध स्थापित करने में सक्षम हो तो निश्चित ही उस कविता को एक सफल कविता कहा जाएगा। 'क्रूरता' ऐसी ही एक कविता है। हम सुनते आए हैं कि सच कड़वा होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो कड़वे सच का कहा जाना किसी के प्रति क्रूरता भी हो सकता है। लेकिन यदि इस स्थिति को सत्य के आग्रही की दृष्टि से देखें तो व्यावहारिकता के तकाजे की वजह से ओढ़ी हुई या फिर विवशतावश अपनाई गई अतिशय विनम्रता भी क्रूरता ही है। क्योंकि यहाँ किसी ज़रूरी सच के कहे जाने को बाधित किया जाता है। मनुष्य के मनोजगत की गहन पड़ताल करती ऐसी अनेक कविताएँ इस संग्रह में है। कविता की पंक्तियाँ देखें – गहराते नशे और लंबे अंतराल के बाद/ तुम्हारा बताना कि/ अतिशय सच क्रूरता होती है/ मैं सिर्फ़ सिर हिला पाया/ पर तुम्हारे बेहोश होने से पहले कह भी पाया/ हाँ अतिशय सच क्रूरता होती है/ जैसे अतिशय विनम्रता भी।

जहाँ तक काव्य-शिल्प और शैली की बात है, मितभाषिता के अलावा विनम्रता एवं सहजता भी विनोद कुमार श्रीवास्तव की कविता का एक गुण है। उनकी कविता में अपनी बात मनवाने का आग्रह नहीं दिखाई देता और किसी प्रकार का ऊँचा स्वर सुनाई नहीं देता। बड़ी से बड़ी बात वे बिना किसी भूमिका के बड़ी सादगी और तटस्थता के साथ सीधे-सरल शब्दों में कह जाते हैं। वह तो सजग पाठक की विवशता होती है कि अनलिखे को पढ़ने के लिए, और लिखे हुए को समझने के लिए उसे बार-बार ठहरना होता है। इस तरह अर्थ-निष्पत्ति के लिए किया गया पाठक का पुरुषार्थ और प्रयास उसे कविता के पाठ का अतिरिक्त सुख देता है। ध्यान से देखा जाए तो सहृदय पाठक को इन कविताओं के पीछे छिपी कवि की पीड़ा और अंतहीन वेदना अपने मुखरतम रूप में दिखाई देती है। साथ ही यह भी दिखाई देता है कि कवि ने कलम का इस्तेमाल एक कुशल सर्जन के चाकू की तरह किया है, जो सिर्फ़ उतना ही कट लगाता है जितनी ज़रूरत होती है। ऐसा करते हुए जो निर्लिप्तता सर्जन के लिए आवश्यक होती है, वह एक कवि के रूप में विनोद कुमार श्रीवास्तव में भी दिखाई देती है। शायद इसीलिए उनकी कविताएँ अनुभूति की तीव्रता के बावजूद भावनाओं के बोझ से लदी हुई महसूस नहीं होतीं। वे मनुष्य के व्यक्तिगत, सामाजिक अथवा राष्ट्रीय जीवन की विसंगतियों की ओर इशारा भर करती हैं। 'इस विकासशील देश की इस बेला में' कविता की पंक्तियाँ देखें – फिर भी अगर तुम मान ही बैठे/ कि अपने इस जनतंत्र में/ बोलने की आज़ादी है तो/ मुँह खोलने से पहले/ कुतर्कों का अपना खजाना दिखाओ/ ..... तर्कों का सुर बहुत मद्धिम होता है/ ख़ासकर अच्छे दिनों की हवा/ और ढोल बाजे में।

विनोद कुमार श्रीवास्तव के पास नश्तर सी कलम ही नहीं, ख़ुर्दबीन सी नज़र भी है। उन्हें अक्सर समाज की वे सच्चाइयाँ भी दिखाई पड़ जाती हैं जो आम तौर पर एक साधारण व्यक्ति नहीं देख पाता। ऐसी अनेक कविताएँ संग्रह में हैं जो समाज के जनसांख्यिकीय ही नहीं बल्कि सामाजिक, अर्थशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक पक्षों, तथ्यों और विद्रूपताओं को संबोधित करती हैं। इन कविताओं में कवि की इन विषयों से संबंधित चिंताओं, सरोकारों एवं विचारों का अंत:प्रवाह है, जो सीधे दिखाई तो नहीं देता लेकिन जिसकी उपस्थिति लगातार महसूस की जाती है। जो स्पष्ट दिखाई देता है वह है इन कविताओं का लक्षित अथवा व्यंजित अर्थ और उनकी मार्मिकता। संग्रह की 'सार्वजनिक प्रार्थना' शीर्षक कविता इसका उत्तम उदाहरण है। आमतौर पर हम समाज को दो हिस्सों में बँटा हुआ देखते हैं, एक सर्वहारा और दूसरा बुर्जुआ। इस कविता में कवि ने सर्वहारा से भी निचले स्तर पर एक वर्ग को चिह्नित किया है, जिसमें लोग अवमानवीय (subhuman) ही नहीं बल्कि मूक पशु सा जीवन जीते हैं। ये वे लोग हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सत्ता से जुड़े नहीं होते और जिनका इस धरती पर होना या न होना बराबर है। सर्वहारा के साथ तो कम से कम प्रतिपक्ष होता है। संघर्ष के लिए उसके पास सामर्थ्य एवं नेतृत्व होता है। लेकिन इस वर्ग के पास ऐसी कोई सहूलियत नहीं होती। इनमें शायद उन्हें गिना जा सकता है जो शहरों में फुटपाथ पर रहते हैं, जिनका कोई घर नहीं होता या जिनके पास कोई काग़ज़

नहीं होता कि वे अपनी नागरिकता का प्रमाण दे सकें। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं – न वे मारते हैं न वे मरे/ न वे शासक हैं न ही प्रतिपक्ष/ न उनके पास पैसे हैं/ न वे मानवाधिकार की लड़ सकते हैं लड़ाई/ न वे पत्रकार हैं कि दमकते हुए/ बरसाते रहें सूचना पर सूचना/ न वे विद्वान हैं महिमा से मंडित न ही उनके हाथों में आया कभी राजदंड/ ऐसे लोग तर्क क्या दें इस देश में होने का।

सभ्यता की विकास यात्रा में तकनीकी उपादानों ने जिस तरह से मनुष्य के जीवन की नैसर्गिकता को प्रभावित किया है, उस पर भी विनोद कुमार श्रीवास्तव का बराबर ध्यान है। आज सूचना प्रौद्योगिकी ने धरती एवं आकाश को सूचनाओं से पाट दिया है। सूचनाओं का बोझ व्यक्ति की चेतना एवं प्रज्ञा को क्षीण, सीमित एवं कुंठित कर रहा है। वर्तमान समय में मीडिया जो कि अधिकतर बाह्य जगत के समाचारों से बनता है, मनुष्य के अंतर्जगत के एक बड़े हिस्से पर क़ाबिज़ है। 'अँधेरा' कविता में व्यक्ति का अपने ही जीवन से विस्थापन दिखाई देता है। इस कविता में कवि कहता है कि सूचनाओं के जंगल में जीने के लिए बहुत कम जगह रह गई है, तिस पर जीवन में विश्वास के लिए भी कोई जगह नहीं रही। वर्तमान की विडंबनापूर्ण जीवन-स्थितियों का इससे वस्तुनिष्ठ और गंभीर मूल्यांकन क्या हो सकता है। इस कविता की पंक्तियाँ देखें – सूचना बरस रही है/ आंधी तूफ़ान और बारिश की तरह/ ..... रोशनी इतनी कि/ आँखें बंद हो जाएँ/ ..... अब नहीं बच रहे/ जीवन में कोई रहस्य/ ..... कितना भयानक है/ सब कुछ जान लेना।

विनोद कुमार श्रीवास्तव का काव्य-बोध उन्हें मानवीय संबंधों के सूक्ष्म निरीक्षण एवं विश्लेषण की ओर ले जाता है। संग्रह में इस विषय पर पर्याप्त संख्या में कविताएँ हैं। संबंधों में मनुष्य दो स्तरों पर जीता है - परिवार के स्तर पर और समाज के स्तर पर। इन दोनों ही स्तरों पर व्यक्ति की अन्य व्यक्तियों के साथ अलग-अलग तरह की अंतःक्रिया, क्रिया एवं प्रतिक्रिया होती है। दो व्यक्तियों के बीच संबंध अपनी प्रकृति में मात्र स्थूल नहीं होता, बल्कि उसका सूक्ष्म आयाम अधिक प्रभावी होता है। हर तरह का संबंध एक गहराई हासिल कर लेने के बाद मन और बुद्धि से आगे जाकर व्यक्ति के चित्त में अपनी जगह बना लेता है। पारिवारिक संबंधों की तुलना में सामाजिक संबंधों में सामान्यतः जटिलता कम होती है। क्योंकि निकटता के साथ ही इन संबंधों में व्यक्तियों के बीच स्वाभाविक एवं आवश्यक दूरी भी होती है। इन संबंधों में मैत्री के साथ ही बहुधा ईर्ष्या एवं स्पर्धा की भावना भी पर्याप्त प्रबल रहती है। यह संबंध चेतन में अधिक अवचेतन में कम होता है। इसके बरअक्स चूँकि परिवार एक नैसर्गिक व्यक्ति-समूह होता है, पारिवारिक संबंध अपने आदर्श रूप में ईर्ष्या, स्पर्धा आदि से परे होते हैं। परिवार के सदस्यों में परस्पर प्रेम, विश्वास, समर्पण एवं सह-अस्तित्व का भाव स्वाभाविक रूप से देखा जाता है। परिवार के स्तर पर दो व्यक्तियों का संबंध चेतन में जितना होता है, अवचेतन में उससे कम नहीं होता, बल्कि अधिक ही होता है। चेतन में यह भौतिक उपस्थिति या स्थूल स्मृति पर आधारित होता है, जबकि अवचेतन में यह चौबीस घंटे बना रहता है।

व्यवहार में देखें तो पारिवारिक संबंध भी राग-द्वेष से परे नहीं रह पाते। व्यक्तिवगत भिन्नताओं एवं मानवीय कमज़ोरियों की वजह से बहुधा परिवार के सदस्यों में द्वंद्व की स्थिति देखी जाती है। लेकिन यह भी सच है कि अक्सर इस संबंध से बाहर आ जाना भी सहज नहीं होता। ऐसे में उत्पन्न होने वाले द्वंद्व एवं अंतर्विरोध व्यक्ति की संवेदना को अलग ही तरह से प्रभावित करते हैं। यदि संबंध में ऐसा कोई अंतर्विरोध न हो तब भी उन सूक्ष्म अनुभूतियों को कविता में ढालना चुनौतीपूर्ण ही होता है। इसके लिए कवि में एक विशिष्ट संवेदना एवं क्षमता का होना आवश्यक होता है, कि वह अवचेतन में उतरकर इन संबंधों की सही पहचान एवं मूल्यांकन कर सके एवं उनमें निहित परस्पर पूरकता एवं समर्पण के भावों के स्पंदनों को महसूस कर सके। इस अनुभूति के आधार पर रची गई कविता संबंधी का मात्र व्यक्ति-चित्र नहीं होती, बल्कि उसमें उस संबंध की सार्वकालिकता एवं सार्वभौमिकता प्रतिबिंबित होती है। आमतौर पर देखा जाता है कि माता, पिता, बहन, भाई आदि पर जो कविताएँ लिखी जाती हैं, वे नॉस्टैल्जिक होती हैं। वे इन सम्बन्धियों के साथ बिताए गए समय, तत्कालीन भावनात्मक अंतःक्रिया एवं मधुर-मार्मिक स्मृतियो पर ही आधारित होती है। संबंधी-विशेष पर केंद्रित ऐसी कविताएँ मात्र व्यक्ति-चित्र बनकर रह जाती हैं। इसके बरअक्स विनोद कुमार श्रीवास्तव की कविताओं में माता, पिता, बहन आदि व्यक्तिवाचक नहीं जातिवाचक संज्ञा हैं। पिता पर कविता पितृत्व यानी फादरहुड पर कविता है,

माता पर कविता मातृत्व यानी मदरहुड पर और बहन पर कविता भगिनित्व यानी सिस्टरहुड पर कविता है। इस तरह ये कविताएँ संबंधी को नहीं बल्कि संबंध को संबोधित होती हैं।

संबंधों के स्पंदनों से अनुनादित विनोद कुमार श्रीवास्तव की कविताएँ अत्यंत गुणवत्तापूर्ण एवं भावप्रवण हैं। 'लौटते हुए' कविता की पंक्तियाँ देखें – एक बड़े से परिवार के लिए/ सिंकी तमाम रोटियों में/ पहचान ली जातीं/ माँ की सेंकी रोटियाँ/ हर गोरी रोटी के बीच/ भूरे और चिंता से भरे/ उनकी दो या तीन/ उँगलियों के निशानों से/ सभी कहते उन्हें/ माँ के छापे वाली रोटियाँ/ और वह छापा हमेशा दिखता/ हम सबों पर/ उठते बैठते बोलते और सोते हुए। इस कविता में वे आगे कहते हैं कि आज समय बहुत बदल गया है। पुरानी पीढ़ी में बच्चे माँ-बाप के नाम से पहचाने जाते थे, जबकि आज माँ-बाप बच्चों के नाम से पहचाने जाते हैं। यानी बच्चों पर माँ-बाप की ऐसी कोई छाप ही दिखाई नहीं पड़ती जिसका ज़िक्र ऊपर किया गया है। दो समयों में अंतर करने की यह युक्ति कमाल की है। कविता का अंत इस तरह होता है – यह बीते और आने वाले दिनों पर/ सब्र का ही नहीं/ प्रार्थना का समय भी है।

अपनी कविता में विनोद कुमार श्रीवास्तव बड़ी ख़ूबी से यह बात स्थापित करते हैं, और यह हम सबका साझा अनुभव भी है, कि संबंध यदि सच्चे अर्थों में परस्पर पूरकतापूर्ण है तो उसका आधार प्रेम ही होता है, आर्थिक अथवा सामाजिक स्थिति या भौतिक उपलब्धियाँ नहीं। प्रेम आधारित इस संबंध को उन्होंने परिवार से बाहर निकल गाँव या शहर तक भी विस्तार दिया है। जिस तरह व्यक्ति अपने परिवार के एक-एक सदस्य या घर की एक-एक चीज़ से जुड़ा होता है, या जिस तरह वह अपने घर की छत और दीवार के स्पंदनों को महसूस करता है, वही उसके साथ अपने गाँव या शहर के स्तर पर भी होता है। अपने शहर के लोगों, गली, चौबारे, मंदिर, मोहल्ले या बाज़ार के साथ भी उसका जुड़ाव कुछ इसी तरह का होता है, और इसीलिए अंततः अपना शहर ही सबसे प्यारा और सबसे सुंदर महसूस होता है। वे कहते हैं कि कोई शहर सुंदर तभी लग सकता है जब उससे प्रेम किया जाए। 'अपने शहर से वापसी' कविता देखें – या मैं चुप रहूँ/ और फ़िर लौट कर लिख भेजूं/ शायद दुनिया में ऐसी कोई जगह नहीं/ जो सुंदर हो किसी दूसरी जगह से/ या कि दुनिया में ऐसी कोई जगह नहीं/ जो कि सुंदर लगे/ बिना उससे प्रेम किए।

विनोद कुमार श्रीवास्तव की सामाजिक संबंधों पर कविताओं में भी व्यक्तियों की परस्पर क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म चित्रण देखा जा सकता है। बूढ़े सीरीज की कविताएँ ऐसी ही हैं, जो एक तरह से संबंधों पर लिखी कविताओं का ही विस्तार हैं। इन कविताओं में कवि ने वृद्धों के जीवन के अनेक मार्मिक पहलुओं यथा एकाकीपन, असुरक्षा आदि को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। इनमें वृद्धों के मनोजगत का बहुत बारीक प्रेक्षण, निरीक्षण एवं विश्लेषण दिखाई देता है। ये कविताएँ मार्मिक ही नहीं बल्कि कई बार कुछ व्यंजक एवं मनोरंजक भी हैं। 'लगभग बासठ का मैं' चार कविताओं की श्रृंखला है। एक कविता में कवि कहता है कि वृद्धावस्था में पारिवारिक औऱ सामाजिक जीवन में सक्रियता का समाप्त हो जाना एक तरह से मृत्यु ही है, यद्यपि साँसें चलती रहती हैं। पंक्तियाँ देखें – मौत तो आती है किसी एक दिन ही लेकिन/ उसके बाद साँसें लेते रहते हैं हम/ अभ्यास के ही सहारे/ जब तक की अपने आप ही वह बंद न हो जाए।

परिवारों में वृद्ध बहुधा उपेक्षित रहने के लिए अभिशप्त होते हैं। बेटों-बहुओं के पास अक्सर उनके लिए वक़्त नहीं होता। ऐसे में वे सुबह-शाम पार्क में टहलने वाले साथी वृद्धों के साथ अपनी दुनिया बसा लेते हैं। उनकी आपसी सुख-दुख, हारी-बीमारी आदि की बातें, शिकवा-शिकायतें, ईर्ष्या-स्पर्धा आदि वृद्धों के उस समूह में ही होती हैं। इसी श्रृंखला की एक अन्य कविता में जब एक बूढ़ा दूसरे को अपनी किसी बीमारी के बारे में बताता है तो दूसरा यह सोचकर संतोष की साँस लेता है कि चलो उसे यह बीमारी नहीं है। लेकिन वहीं दूसरी ओर पहला बूढ़ा अपनी बीमारी भूल यह सोचकर संतुष्ट होता है कि दूसरा जो शायद ज़्यादा असुरक्षित है, उसे कुछ सुकून तो मिला। ग़ौरतलब है कि घर-परिवार की बेध्यानी से निराश ये बूढ़े किस तरह से आत्मत्याग की सीमा तक जाकर भावनात्मक स्तर पर एक-दूसरे का सहारा बनते हैं। बिना लाउड हुए पूरी दृश्यात्मकता के साथ जीवन की विडंबनाओं को इस ख़ूबी से काग़ज़ पर रीक्रिएट करना बिरले ही कवियों के बस की बात होती है। पंक्तियाँ देखें - बूढ़ों के चेहरों पर/ बहुत सुकून दिखता है/ सुनकर मेरी गठिया या/ गर्दन के दर्द के बारे में/ ..... मेरे

लिए इससे आसान/ कोई रास्ता नहीं कि अपने से बड़े/ असुरक्षित लोगों को/ अपनी बीमारी का/ एहसास दिलाऊँ।

बूढ़े शरीर से भले ही अशक्त अथवा अक्षम हों, लेकिन उनका मन एवं बुद्धि पूर्णत: जागृत रहती है। प्रेम एवं सम्मान की अपेक्षा जिस तरह से बच्चों एवं युवाओं को होती है, उसी तरह वृद्ध भी प्रेम एवं सम्मान की अपेक्षा करते हैं। 'कतार में बूढ़ा' कविता देखें – भीख माँगने वालों और/ लंगर खाने वालों की कतार में/ फ़र्क करना सीख रहा है/ बैंक की कतार छोड़/ वैलनेस सेंटर की कतार में/ लगा हुआ बूढ़ा। संबंध तो मनुष्य का ईश्वर के साथ भी होता है। इस संबंध को भी कवि ने निराले ही ढंग से देखा है। धन्यवाद यूँ तो हम किसी के अपने ऊपर किए गए उपकार के लिए करते हैं, लेकिन 'प्रार्थना' कविता में कवि ने धन्यवाद को भी एक निरंतर याचना का ही स्वर माना है, यानी इस बार का धन्यवाद अगली बार की याचना की पूर्व तैयारी है। पंक्तियाँ देखें – हम माँगते ही रहते हैं/ कभी मित्रों से/ माँ-बाप से/ ईश्वर से वह भी चुपचाप/ ..... धन्यवाद भी/ याचना की लय है।

तमाम विडंबनाओ एवं विसंगतियों के बावजूद विनोद कुमार श्रीवास्तव की दृष्टि में जीवन एक उत्सव है। 'उत्सव यात्रा' शीर्षक के अंतर्गत दो कविताओं में उनकी यह जीवन-दृष्टि स्पष्ट दिखाई देती है। वे मानते हैं कि शून्य से शून्य तक की यात्रा, या कबीर के शब्दों में 'जस की तस धर दीनी चदरिया' ही जीवन का उत्सव है। पंक्तियाँ देखें – कहीं के भी/ ज़ीरो माइल से चलकर/ कहीं भी जाओ/ किधर भी जाओ/ कितना भी चलो/ ..... किसी ज़ीरो माइल पर/ पहुँचना ही/ जीवन का उत्सव है। दूसरी कविता की पंक्तियाँ हैं – एक ज़ीरो माइल से चल/ दूसरे माइल पर पहुँच/ भले वह पहले वाला ही हो/ हम बीच की दूरी/ माप भी सकते हैं।

इन पंक्तियों में गति-विज्ञान के दो पारिभाषिक शब्द 'विस्थापन' एवं 'दूरी' यानी डिस्प्लेसमेंट एवं डिस्टेंस अपने अर्थ के साथ ध्वनित होते हैं। यानी व्यक्ति लंबी दूरी तय कर यदि वापस वहीं पहुँच जाए जहाँ से वह चला था, तब विस्थापन अवश्य शून्य होगा किंतु अनुभव तो वह अर्जित करेगा ही। यह अनुभव उसे निश्चित ही अधिक चेतना संपन्न बनाएगा। और चेतना का यह विकास ही जीवन का उत्सव है। जीवन के प्रति यह आशा एवं आस्था ही विनोद कुमार श्रीवास्तव की कविता के विशिष्ट तत्व हैं। 'जाना' कविता में गति-विज्ञान का एक और पारिभाषिक शब्द 'सापेक्ष गति' अपने अर्थ के साथ साकार होता है। इस कविता में कवि कहता है कि किसी को विदा करते समय यदि मनुष्य अपने स्थान पर खड़ा हो तब भी वह जाने वाले से स्वयं को बहुत दूर जाता हुआ अनुभव करता है, वैसे ही जैसे यदि हमारी ट्रेन प्लेटफार्म पर खड़ी हो और बगल वाली ट्रेन चलने लगे तो हमें विपरीत दिशा में स्वयं के चलने का आभास होता है। पंक्तियाँ देखें – जब कोई जाने लगता है/ मैं जानता ही नहीं कैसे कहूँ/ रुक जाओ/ ..... बस/ एक ही जगह/ कदमताल करता हूँ/ ख़ुद के जाने का/ अनुमान सा करते हुए।

जीवन के प्रति इस गहन दृष्टि ने विनोद कुमार श्रीवास्तव की प्रतिरोध की कविता को भी अनोखी धार देकर समृद्ध किया है। यह धार व्यवस्था के प्रति प्रत्यक्ष कटुता, तिक्तता, घृणा अथवा दोषारोपण से नहीं बल्कि अनुभूति के स्तर पर स्वप्नभंग एवं निराशा से उत्पन्न मौन असहमति से आती है। प्रतिरोध की उनकी कविताएँ पाठक की त्यौरियाँ नहीं चढ़ातीं, भुजाएँ नहीं फड़कातीं, बल्कि उसके स्वत्व को उद्वेलित एवं आत्मा को आंदोलित करती हैं। इस तरह ये कविताएँ पाठक के अंदर संचित प्रतिरोध की ऊर्जा को क्षय होने से बचाती हैं, एवं बदलाव के लिए उस ऊर्जा के सार्थक एवं रचनात्मक नियोजन हेतु प्रेरित करती हैं। 'लगभग अंतिम प्रार्थना' कविता में कवि के भाव हैं कि लोक तो सध नहीं पाया, परलोक भी नहीं सधा। हालांकि आत्मा दागी नहीं होती, कर्म तो उससे चिपक ही चुके हैं। रोम जल रहा है और राजा बंसी बजा रहा है। कबीर के सबद के साथ कवि ने अलगाव के आरोपित भाव को अत्यंत प्रभावी ढंग से रखा है। सीएए और एनआरसी जैसे कानूनों पर इससे मार्मिक टिप्पणी क्या हो सकती है। पंक्तियाँ देखें – आत्मा और सुप्रीम कोर्ट अब/ दोनों दाग़ी हो ही चुके हैं/ ..... राजा सब हैं बीन बजाते/ ..... / कुछ को छोड़ यहाँ हैं आख़िर/ सभी विदेशी/ माटी के हैं सभी खिलौने जिनको/ "रहना नहिं देश बिराना है"/ जहाँ से आए वहीं लौटकर/ माटी में मिल जाना है।

शब्द का सत्व उसके अर्थ में निहित होता है। इस अर्थ के पीछे मनुष्य का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक इतिहास होता है। सूचना-क्रांति के इस युग में शब्दों का आधिक्य लगातार भाषा को निष्प्रभावी बनाता जा रहा है। कोई शब्द सच्चे अर्थों में किसी विचार का वाहक तभी होगा जब

उसका सही अर्थ अपने संपूर्ण संदर्भ के साथ संप्रेषित होगा। शब्द, अर्थ और विचार का सामंजस्य इसलिए भी अनिवार्य है कि विचार व्यक्ति के व्यवहार को संचालित एवं नियंत्रित करता है। लेकिन आज शब्द विचार-संप्रेषण का कम और व्यापार का माध्यम ज़्यादा बन गए हैं। इस उपक्रम में शब्द अपनी अस्मिता एवं अर्थवत्ता खोते जा रहे हैं। वर्तमान सत्तातंत्र इस बात को भली-भाँति जानता है, इसीलिए उसने व्यक्ति के व्यवहार को अपने अनुसार नियंत्रित करने के लिए प्रचलित शब्दों के अर्थ का अनर्थ कर नया व्याकरण ईज़ाद करने का प्रकल्प खुलेआम शुरू कर दिया है। कुछ वर्ष पहले तक जो शब्द सकारात्मक एवं सात्विक अर्थ रखते थे, आज वे न केवल अपना पारंपरिक अर्थ खो चुके हैं, बल्कि इन शब्दों का विरूपित अर्थ व्यक्ति और समाज की चेतना में घर कर चुका है। इस क्रम में कुछ नए शब्द गढ़े जा रहे हैं और कुछ शब्द चलन से बाहर भी किये जा रहे हैं। वर्तमान सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों पर टिप्पणी करती कविता 'अपना व्याकरण' की पंक्तियाँ देखें – बिना अर्थ बदले/ 'प्रगति' जो सचमुच केवल/ 'प्रथम पुरुष' संबंधी शब्द है/ उसमें 'अन्य पुरुष' संबंधी/ ध्वनि भी लाई जाएगी/ 'जन' जो 'अन्य पुरुष' संबंधी/ सिर्फ़ वाचिक शब्द है/ उसमें से 'सिर्फ़' की ध्वनि/ ख़त्म कर दी जाएगी/ ..... ऐसे ही तमाम शब्द हैं जिन्हें/ दुरुस्त करना या मिटाना/ ज़रूरी है और फिर/ तर्क और बाहुबल के बीच/ दूरी का भ्रम भी तो मिटना है।

विनोद कुमार श्रीवास्तव के कवित्व में एक ख़ास तरह का 'विट' है जो उनके तंज़ को अतिरिक्त धार देता है। तंज़ ख़ास तौर पर उन कविताओं में दिखाई देता है जिनमें मनुष्य की स्वभावगत कमज़ोरियों जैसे अकर्मण्यता, अहंकार, आत्ममुग्धता, प्रदर्शनप्रियता आदि की ओर इशारा किया गया है। ऐसी कविताओं में व्यंग्य अक्सर हास्य का पुट लिए हुए आता है। सामाजिक एवं व्यवस्थागत विद्रूपताओं के लिए ज़िम्मेदार अफ़सरशाही एवं कुत्सित राजनीति का ज़िक्र आने पर तो यह व्यंग्य और भी पैना और तीखा हो उठता है। तब व्यंग्य के साथ हास्य नहीं बल्कि तीव्र क्षोभ अनुषंगी भाव के रूप में सामने आता है। 'प्रसिद्धि' कविता की पंक्तियाँ देखें – कुछ का तो यहाँ तक कहना है/ कि उनका प्रसिद्ध न होना/ एक सांस्कृतिक दुर्घटना है/ और पृथ्वी को ईश्वर-प्रदत्त/ पुरस्कार का तिरस्कार भी।

'आतंकवाद' भी ऐसी ही एक व्यंजनापूर्ण कविता है – एक अधिकारी के पास/ दो मित्र साथ गए/ ..... पहले को बोलना था/ दूसरे को चुप रहना/ ..... पहले ने साहब से कहा/ "आप बहुत कुशल हैं"/ वे चुप रहे/ ..... "आप बहुत अच्छे हैं/ बहुत दयालु भी/ बहुत ग़रीब परवर हैं/ उतने ही महान भी"/ फिर भी वे चुप रहे/ ..... पहले ने फिर कहा/ "सचमुच हम करते हैं/ आपसे बहुत प्रेम"/ पर वे न ख़ुश हुए/ न ही बोले/ ..... चेहरे पर झल्लाहट आए/ इसके पहले ही/ दोनों भाग लिए/ ..... दूसरे ने फिर पहले से कहा/ "अबे वे ख़ुश कैसे होते/ तूने यह कब कहा/ कि बहुत आतंकित भी हैं/ उनसे हम" ।

विनोद कुमार श्रीवास्तव की कविताएँ इस बात की गवाही देती हैं कि उन्होंने जो भी लिखा है एक साक्षी की तरह लिखा है। और इसीलिए उनकी कविताओं में लंबी पंक्तियाँ या वृतांत जैसी चीज़ दिखाई नहीं देती। बहुत कम शब्दों में ही वे अपनी बात कहकर आगे बढ़ जाते हैं। यह मितभाषिता अभिव्यक्ति में बाधा नहीं बनती बल्कि अभिव्यक्ति को समृद्ध ही करती है। तीसरे संग्रह के शीर्षक 'कुछ भी तो नहीं कहा' का एक इंगित अर्थ यह भी निकलता है कि कवि जो कहना चाहता था, उसने बहुत ही कम शब्दों में कहा है, या फिर सूत्र रूप में सब कुछ कह दिया है और बात पाठक तक पहुँच गई है। एक स्थिति की कल्पना करें कि जिनकी और ये शब्द, अनुभव या अनुभूतियाँ लक्षित हैं, यदि वे तिलमिलाकर शिकायत करें कि आपने यह क्यों कहा या ऐसा कैसे कह सकते हैं आदि, तो कवि बड़े आराम से कह सकता है – 'कुछ भी तो नहीं कहा'। मितभाषिता की यह ताक़त उनकी कविताओं का एक अति विशिष्ट गुण है।

कवि की रचना-यात्रा उसकी जीवन-यात्रा के साथ-साथ चलती है। जीवन के अलग-अलग पड़ावों पर लिखी गई कविता कवि की तत्कालीन दृष्टि, जीवन-मूल्यों एवं सरोकारों का प्रतिबिंब होती है। कवि की किसी कृति की समीक्षा अथवा मूल्यांकन उसकी पूर्व कृतियों से निरपेक्ष रहकर की तो जा सकती है, लेकिन यदि पूर्व कृतियों के आलोक में नई कृति को देखा जाए तो निश्चित ही इसकी निष्पत्तियाँ अधिक रोचक, महत्वपूर्ण एवं उपयोगी हो सकती हैं। यह उद्यम समय के साथ कवि के रचनात्मक एवोल्यूशन का परिचय तो देता ही है, साथ ही इससे यह भी समझने में मदद मिलती है कि

उम्र के अलग-अलग पड़ावों पर बाह्य एवं अभ्यंतर जीवन के कौन से तत्व कवि को प्रभावित करते हैं, और एक कवि के रूप में उसकी प्राथमिकताएँ और सरोकार क्या होते हैं।

विनोद कुमार श्रीवास्तव के पहले कविता संग्रह 'सच मैंने बनाए नहीं' की अधिकांश कविताएँ अंतस् के आलोड़न-आंदोलन से जन्मी हैं। शायद इसीलिए इस संकलन में आत्मीय संबंधों यथा माँ, बहन, बच्चों, बूढ़ों आदि पर कविताओं की श्रृंखलाएँ हैं, जो संबंधों में निहित प्रेम, समर्पण, जटिलताओं, विवशताओं एवं अंतर्विरोधों का जीवंत एवं मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती हैं। इन कविताओं में छीजते पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्यों एवं उससे उत्पन्न तनाव, निराशा, एवं एकाकीपन का भी अत्यंत संवेदना-पूर्ण चित्रण मिलता है। इसके अलावा इस संग्रह में शोषित एवं वंचित वर्गों के प्रति गहन समानुभूति से भरी कविताएँ भी हैं, जिनमें इन वर्गों की कठिन जीवन स्थितियों के लिए ज़िम्मेदार सामाजिक एवं राजनीतिक कारकों को भी कवि चिह्नित करता है। उनका दूसरा कविता संग्रह 'एवजी में शब्द' मानव-मूल्यों का लघु काव्य है। पहले संग्रह की कविताओं के भाव-बोध के बरअक्स इस संग्रह की कविताओं में कवि के गहन मूल्य-बोध की प्रधानता दिखाई देती है। ये मूल्य हैं व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में परस्पर संबंधों में निहित मूल्य, जो सह-अस्तित्व के लिए कार्य, विचार एवं व्यवहार के स्तर पर सामंजस्य का संपोषण करते हैं। इन कविताओं में अपने अंतर्जगत् से बाहर आकर कवि एक बड़े परिदृश्य को सामने रखता है। नागरिक जीवन के संघर्ष, विडंबनाएँ एवं विसंगतियाँ भी इस संग्रह की कविताओं का विषय बनी हैं। तीसरे संग्रह 'कुछ भी तो नहीं कहा' में कवि ने समाज एवं तंत्र के स्तर पर व्याप्त अराजकता एवं अव्यवस्था पर अपनी कलम चलाई है। इन कविताओं में, जैसा कि ऊपर कहा गया है, अपने विशिष्ट अंदाज़ में प्रतिरोध की अंतर्धारा भी लगातार मौजूद है। इस तरह कवि की टाइमलाइन में लगभग एक-एक दशक के अंतराल पर अवस्थित ये तीनों कविता संग्रह अपने कथ्य एवं शिल्प में एक-दूसरे से स्पष्ट: अलग हैं। इसीलिए इन संग्रहों की कविताएँ यदि साथ पढ़ी जाएँ तो भी दोहराव का एहसास नहीं होता।

आज सामाजिक जीवन में आम तौर पर मनुष्य वही करता है जो उसे प्रिय हो, भले ही वह अनैतिक हो। वही मार्ग चुनता है, जिसमें उसका व्यक्तिगत हित सधता हो, या उसे व्यक्तिगत लाभ हो, भले ही वह मार्ग न्यायसंगत न हो। 'सुविधापूर्णता' ही आज मनुष्य का जीवन-दर्शन है, 'न्यायपूर्णता' नहीं। अपनी कविता में सत्य एवं न्याय का अलख जगाने वाले बहुतेरे कवि भी इससे अलग नहीं। समाज में व्याप्त जाति-धर्म आधारित सांप्रदायिकता पर स्यापा करने वाले ये कवि अक्सर स्वयं के कवि समाज में व्याप्त स्वार्थ, पूर्वाग्रह, द्वेष, कुंठा, श्रेष्ठता-हीनता बोध, अथवा वैचारिक संकीर्णता पर आधारित सांप्रदायिकता का पोषण करते दिखाई देते हैं। साहित्यकारों के लिए यह कवि-लेखकों के किसी मंडल का सदस्य बन महामंडलेश्वर की चाटुकारिता एवं अपने व्यक्तिगत दुराग्रहों अथवा निष्ठाओं के आधार पर प्रतिमाओं को बनाने-गिराने का दौर है। अपनी सुविधानुसार कविता के प्रतिमानों की मनमानी परिभाषा, व्याख्या एवं स्थापना कवियों एवं आलोचकों का प्रमुख कर्म हो गया है। कोई अमूर्तता को, भले ही वह कृत्रिम, सायास एवं अतार्किक हो, कविता का महान मूल्य मानता है, कोई सपाट-बयानी को असल कविता घोषित कर 'सूक्ति' शब्द का अर्थ समझे बिना किसी सुघड़ कविता का 'सूक्ति' कहकर उपहास उड़ाता है। जबकि सूक्ति का संधि-विच्छेद है - 'सु + उक्ति' और उसका अर्थ है – सुंदर ढंग से कही गई सार्थक एवं सारगर्भित बात। अरुचिकर साहित्यिक राजनीति, गुटबाजी एवं कुतर्कों के इस दौर में बहुत से रचनाकार इस सबसे दूर रहकर अपने एकांत में ही रचना कर्म में रत रहते हैं, वैसे ही जैसे अरण्य में सिंह झुंड में न रहकर अकेले रहना पसंद करता है। विनोद कुमार श्रीवास्तव ऐसे ही एकांतजीवी रचनाकार हैं। 'कलाकार' कविता की पंक्तियां देखें - सत्य या न्याय के लिए/ या जीवन और चेतना के लिए/ या फिर अंधकार और अंत के लिए/ वही ग्राह्य है/ जो सुविधाजनक है/ ..... 'सुविधाजनक' ही/ ब्रह्मांड का/ महानतम कलाकार है।

एक मनुष्य को जीवन में क्या चाहिए? उसे चाहिए स्वयं में सुख, जहाँ वह अपने अंतर्जगत के तमाम द्वंदों एवं दुविधाओं से मुक्त रहे। परिवार के स्तर पर उसे चाहिए शांति एवं समृद्धि, जिसके लिए आवश्यक है परिवार के सदस्यों के बीच आपसी सामंजस्य एवं नि:स्वार्थ दृष्टि। समाज के स्तर पर मनुष्य को चाहिए अभय। और चूँकि परिवार समाज की मूलभूत इकाई है, अभय के लिए आवश्यक है परिवारों के बीच परस्पर भय, श्रेष्ठता अथवा हीनता बोध से मुक्ति। इन सभी जीवन-मूल्यों का आधार

मूल्य है 'विश्वास' – व्यक्ति का स्वयं में विश्वास और परिवार एवं समाज के स्तर पर व्यक्तियों के बीच परस्पर विश्वास। इस विश्वास की बुनियाद पर आधारित सुख, शांति, समृद्धि और अभय की स्वाभाविक परिणति है आनंद – मानव का समाज में अपने मानवत्व के साथ जी पाने का आनंद। स्पष्ट है यह आनंद आध्यात्मिक आनंद की तरह निरपेक्ष एवं एकांतिक नहीं बल्कि सापेक्ष है। यह एक सामूहिक अनुभव है। इसी आनंद के अभाव से कविता जन्म लेती है। यानी कविता-कर्म और कुछ नहीं बल्कि समाज में मानवत्व की प्रतिष्ठा हेतु पुरुषार्थ है। विनोद कुमार श्रीवास्तव ऐसे ही एक पुरुषार्थी हैं। उनके तीनों संग्रह इस बात की तस्दीक़ करते हैं। हिंदी कविता की वर्तमान स्थिति पर उनके क्षोभ का कारण भी यही है कि उसमें उन्हें कवि का यह पुरुषार्थ कम दिखाई देता है।

*****

लेखक परिचय

विनोद कुमार श्रीवास्तव

जन्म: अक्टूबर 30, 1946. मूलत: इलाहाबाद से। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एम.ए. में ओवरऑल टॉपर। फ्रेंच और रशियन में डिप्लोमा। यूजीसी के अंतर्गत रिसर्च फेलो भी रहे। राष्ट्रीय स्तर के वॉलीबॉल खिलाड़ी रहे। वॉलीबॉल में देश के प्रतिनिधित्व के लिए चयनित। 1971 बैच के आई आर एस अधिकारी। 2006 में चीफ कमिश्नर के तौर पर अवकाश प्राप्त। तीन कविता संग्रह प्रकाशित। अनेक कहानियाँ और एक उपन्यास भी प्रकाशित। पहल पत्रिका में ज्ञानरंजन जी के साथ संपादन सहयोगी रहे। चिंतन दिशा पत्रिका में संपादक मंडल के सदस्य।

प्रशांत जैन

जन्म: 18 सितंबर 1968, मुलताई, मध्यप्रदेश। एनआईटी नागपुर से इंडस्ट्रियल इंजीनियरिंग में एम टेक। मुंबई विश्वविद्यालय से मेकेनिकल इंजीनियरिंग में पीएच डी। ब्यूरो ऑफ़ एनर्जी एफिशिएंसी, भारत सरकार, द्वारा प्रमाणीकृत एनर्जी ऑडिटर। आलोचना, कथादेश, रेवांत सहित अनेक पत्र पत्रिकाओं में कविताएँ, ग़ज़लें एवं समीक्षाएँ प्रकाशित। मुंबई से प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिकाओं 'युगीन काव्या' एवं 'अनभै' के क्रमशः 'कविता मुंबई–2024' एवं 'कथा मुंबई 2025' विशेषांकों का अतिथि संपादन। संप्रति: मुंबई के एक प्रतिष्ठित इंजीनियरिंग कॉलेज में अध्यापन।